E-ISSN: 2664-603X
P-ISSN: 2664-6021
IJPSG 2025; 7(8): 264-267
www.journalofpoliticalscience.com
Received: 18-06-2025
Accepted: 23-07-2025

डॉ. अविनाश कुमार
विभाग अध्यक्ष (राजनीति विज्ञान) महात्मा गांधी कॉलेज, सुंदरपुर, दरभंगा, भारत

Corresponding Author:
डॉ. अविनाश कुमार
विभाग अध्यक्ष (राजनीति विज्ञान) महात्मा गांधी कॉलेज, सुंदरपुर, दरभंगा, भारत

आरक्षण एवं दलित वर्ग: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

अविनाश कुमार

DOI: https://www.doi.org/10.33545/26646021.2025.v7.i8d.653

सारांश
विकेन्द्रीकरण, भारत जैसे विकासशील देश में लोकतंत्र को सार्थक और कल्याणोंन्मुखी बनाने के लिए आवश्यक है। पंचायती राज लोकतांत्रीय राजनीतिक व्यवस्था में शासन को आम जनता के दरवाजे तक लाता है। पंचायती राज व्यवस्था लोकतंत्र को अधिक व्यापक रूप से लागू करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। स्थानीय जनता को स्थानीय तरीकों से अपनी समस्याओं का समाधान करने की क्षमता के कारण पंचायती राज व्यवस्था में स्थानीय शासन कार्यों में निरंतर रुचि है। इसलिए, भागीदारी की प्रक्रिया प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से जनता को शासन और प्रशासन का प्रशिक्षण देती है। वर्तमान समय में भारतीय राजनीतिक व्यवस्था को अधिक लोकतांत्रिक बनाने या लोकतंत्र को मजबूत करने के लिए पंचायती राज संस्थाओं को संबैधानिकता देना और आधी ग्रामीण जनता, खासकर दलितों को इन संस्थाओं में शामिल करना है, जो अब तक 73वें संविधान संशोधन से पहले अनदेखा रह गया है।

कुटशब्द: विकेन्द्रीकरण, लोकतंत्र, पंचायती राज, सहभागिता, 73वाँ संविधान संशोधन, ग्रामीण विकास

प्रस्तावना
समाज के अन्य कमजोर वर्ग को राजनीतिक सत्ता में शामिल करना उचित लगता है। राजशाही, सामंतवाद, रूढ़िवाद और जातिवाद ने भारत की राजनीति पर प्रभाव डाला है। इन कारणों ने पंचायती राज व्यवस्था को लागू करने में बड़ी भूमिका निभाई है। भारत में पंचायती राज की स्थापना, 73वां संविधान संशोधन (1993) और स्थानीय निकायों में 50 प्रतिशत दलित आरक्षण के प्रावधान के आधार पर पंचायती राज संस्थाओं की सफल क्रियान्वयन के लिए महत्वपूर्ण सुझाव दिए गए हैं. इन सुझावों में दलितों की सहभागिता, सबलीकरण और सशक्तीकरण में बाधाएं, वैष् वीकरण का दलितों पर प्रभाव शामिल हैं। भारतीय संविधान में पुरुषों और दलितों को समान स्थान दिया गया है, लेकिन दलितों को अभी भी सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक रूप से पीछे देखा जाता है। यह कहना सही होगा कि दलित अभी भी विकास और राजनीतिक सहभागिता से दूर हैं। दलित आज भी भारतीय समाज में कमजोर वर्गों में से एक हैं। राजनीतिक सहभागिता के क्षेत्र में दलितों और पुरुषों की स्थिति बहुत अलग है।[1]
भारत स्वतंत्र होने के बाद लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया शुरू हुई। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण ने पंचायती राज को बनाया। भारत में पंचायत व्यवस्था पुरानी है। प्राचीन भारत में पंच रमेश् वर की मान्यता थी, जो गाँवों के विवादों को हल करते, सार्वजनिक महत्व का निर्धारण

करते थे और धर्मशालाओं का निर्माण और देखरेख करते थे। रामायण, महाभारत, मनुस्मृति और कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में भी गाँवों का महत्व बताया है क्योंकि वे योग्य लोगों को निष्पक्ष रूप से चुनते थे। गांव को शासन और प्रशासन का केंद्र माना जाता है, इसलिए पंचायत महत्वपूर्ण है। पंचायती राज व्यवस्था ने महात्मा गांधी की ग्राम स्वराज्य की कल्पना को साकार किया है। गांधी जी की ग्राम स्वराज्य की अवधारणा का सामाजिक उद्देश्य उतना ही महत्वपूर्ण था जितना कि उनका आर्थिक उद्देश्य था। गांधीजी ने सोचा था कि ग्राम स्वराज्य एक पूरी तरह से लोकतात्रिक संस्था होगी जो स्वाबलंबन से हमारी बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा कर सकेगी। सभी लोग मिलकर काम करेंगे। पांच वयस्क पुरुषों या दलितों से मिलकर गाँव में एक पंचायत बनेगी, जिसमें सभी समान होंगे और कोई पहला नहीं होगा।[2]

ग्रामीण विकास एवं गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम प्रशासन पर जी.वी.के. राव समिति, कार्ड समिति, 1984; पंचायती राज संस्थाओं की समिक्षा पर एल.एम. सिंघवी समिति, 1986; जिला नियोजन पर पी.के. थुंगन समिति, 1988; दिलीप सिंह भूरिया समिति, 1994-95; राष्ट्रीय संविधान कार्यकरण समिक्षा आयोग, न्यायमूर्ति एम.एन. व्यंकटचलैया, 2000-2002; और आयोग की पंचायती केन्द्रीय प्रवर्तित योजनाओं के परीक्षण पर पंचायती राज पदाधिकारियों द्वारा बनाई गई टी.आर. रघुनन्द कार्य बल रिर्पोट 2004, जिला आयोजना पर वी. रामचन्द्रन विशेषज्ञ दल 2005, न्याय पंचायत पर विधेयक निर्माण हेतु प्रो. उपेन्द्र वख्सी समिति 2006, द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग वीरप्पा माईली की छठी रिर्पोट 2009, आदि।[3]

राज्य सरकारों ने पंचायती राज व्यवस्था को मजबूत बनाने के लिए विभिन्न समितियों का गठन किया. सभी राज्यों के अपने अधिनियम हैं। राजस्थान के कुछ राज्यों ने समितियां बनाईं, जैसे कि हरिषचन्द्र माथुर समिति 1963 में, राजस्थान प्रशंसनिक सुधार समिति, सादिक अली समिति 1964 में, गिरधारी लाल व्यास समिति 1973 में, हरलाल सिंह खर्रा समिति 1990 में, अरूण कुमार समिति 1996 में। शिवचरण माथुर आयोग 2000, राजस्थान प्रशासनिक सुधार आयोग, गुलाबचंन्द्र कटारिया मंत्रिमंडलीय उपसमिति 2004-05, महाराष्ट्र; वी.पी. नाईक समिति 1961, बोंगीरवार समिति 1971, पी.बी.पाटिल समिति 1986 उद्धरण साहू समिति से 1986 में, बिहार: एमपी शर्मा समिति, 1963, आंध्र प्रदेश में पुरुषोत्तम पाई समिति ने 1964 में काम किया, रामचन्द्र रेड्डी समिति ने 1965 में काम किया, सी. नरसिम्हा समिति ने 1972-74 में काम किया। हरियाणा—1972 में माडूसिंह समिति, उत्तरी राज्य: 1959 में गोविन्द सहाय समिति, 1965 में राममूर्ति समिति, T.A. वार्गीज समिति, तमिलनांडू, 1973, हिमाचल प्रदेश में हरदयालसिंह समिति ने 1965 में काम किया, कर्नाटक में श्री वैकटप्पा समिति ने 1949-50 में काम किया, डी.एच. चन्द्रशेकरैया समिति ने 1953 में काम किया, काण्डाज्जी बसप्पा समिति ने 1963 में काम किया, और पी. आर. नायक समिति ने 1996 में काम किया। गुजरात में पारिख समिति ने 1960 में किया था और जिनाभाई दर्जी समिति ने 1972-73 में किया था। रिखवदास शाह समिति, वर्ष 1978, मुम्बई: 1969 में बादल समिति, राज्य स्तरीय समितियों, जैसे असम के पी त्रिपाठी समिति 1963, केरल रामचन्द्रन समिति 1988, ने ग्रामीण विकास की कोशिश की है।[4]

स्वतंत्रता के बाद ग्राम पंचायतों की प्रगति पर विचार होने लगे। 10 मई 1948 को, संविधान परिषद के अध्यक्ष डां राजेन्द्र प्रसाद ने कहा कि संविधान का ढांचा ग्राम पंचायतों और अप्रत्यक्ष चुनाव प्रणाली पर आधरित होना चाहिए, लेकिन यह भी कहा गया कि अब संविधान को पूरी तरह से बदलने का अवसर है। अनुच्छेद 40 के अनुसार, राज्य ग्राम पंचायतों का गठन करने के लिए अग्रसर होगा और उनको ऐसे अधिकार और शक्तियां देगा कि वे स्वतंत्र शासन की संस्थाओं के रूप में काम कर सकें।

1957 में बलवंत राय मेहता की अध्यक्षता में गठित समिति को पहली बार श्रेय दिया जाता है। नवंबर 1957 में, पंचायती राज योजना से संबंधित मेहता समिति ने अपना प्रस्ताव प्रस्तुत किया। 1974 में, भारत में दलितों की स्थिति का अध्ययन करने वाली समिति ने अनुसंशा की कि ऐसी पंचायतें बनाई जाएं, जिनमें सिर्फ दलित लोग शामिल हों। 1978 में अशोक मेहता की अध्यक्षता में गठित समिति ने कहा कि दो दलितों को जिला परिषद में सबसे अधिक मत मिले। दलितों को कर्नाटक पंचायत अधिनियम में 25 प्रतिशत आरक्षण दिया गया था। हिमाचल प्रदेश के पंचायत अधिनियम में भी ऐसा ही था। 1988 में, नेशनल पर्सपेक्टिव प्लान फॉर द विमेन ने ग्राम पंचायत से जिला परिषद तक 30 प्रतिशत सीटों का आरक्षण सुझाया था। 1990 के मध्यप्रदेश पंचायत अधिनियम में दलितों को ग्राम पंचायत में 20 प्रतिशत और जिला पंचायत में 10 प्रतिशत का अधिकार दिया गया था। 73वें संविधान संशोधन से पहले, महाराष्ट्र पंचायत अधिनियम में 30 प्रतिशत

आरक्षण और उड़ीसा पंचायत अधिनियम में 1/3 आरक्षण था। 1989 में, पंचायती राज संस्थाओं को सकारात्मक संवैधानिक दर्जा देने के उद्देश्य से 64वां संविधान संशोधन विधेयक संसद के सामने पेश किया गया था, लेकिन राजनीतिक कारणों से यह पारित नहीं हो सका।[5]

बलवंत राय मेहता समिति से 73वें संविधान तक, इन पंचायती राज संस्थाओं में दलितों की भागीदारी के बारे में कई समितियां हुई हैं। इसी संशोधन ने लगभग चार दशक पहले बनाई गई पंचायती राज व्यवस्था को फिर से बल दिया। राजीव गांधी सरकार ने पंचायती राज संस्थाओं से संबंधित विधेयक को संशोधित करके दिसंबर 1992 में 73 वें संविधान संशोधन के रूप में संसद से पारित किया। 24 अप्रैल 1993 को 73वां संविधान संशोधन लागू हुआ। इस संशोधन से संविधान में अध्याय 9 में एक नया खंड जोड़ा गया है। संविधान का अध्याय 9 16 अनुच्छेदों और एक ग्यारहवीं अनुसूची से मिलता है। जिसका नाम "पंचायत" है। 1992 में जारी 73वें संविधान संशोधन अधिनियम ने पंचायती राज व्यवस्था को नई दिशा दी और दलितों को पंचायतों में 33 प्रतिशत आरक्षण देकर उनकी भागीदारी बढ़ा दी।[6]

भारत के कुछ राज्यों, जैसे बिहार पंचायती राज अधिनियम 2006, झारखंड पंचायती राज संशोधन अधिनियम 2008, बिहार पंचायती एवं ग्राम स्वराज्य अधिनियम 1993 में संशोधन, राजस्थान, केरल, उत्तराखंड और महाराष्ट्र, ने दलितों के लिए पंचायती राज में 50 प्रतिशत आरक्षण देने में सराहनीय कार्य किया है. पंचायती राज में दलितों के लिए 73वें संविधान संशोधन की 243 "डी" भारत में इस कानून को लागू करने के लिए बिहार राज्य को सर्वप्रथम श्रेय दिया जाता है। 55% दलितों ने उत्तराखंड राज्य कं पंचायत चुनाव में भाग लिया, जो प्रशंसनीय रूप से सराहनीय रहा है। यहाँ पर उत्तर प्रदेश पंचायती राज अधिनियम ही लागू होगा। इन राज्यों में भी पंचायत चुनाव हुए हैं, जिसमें दलितों को पंचायती राज व्यवस्था में सक्रिय भाग लेने का अवसर मिल गया है।

भारत में पंचायती राज व्यवस्था का उद्देश्य क्या था और इसकी सफलता कहां तक हुई? यह प्रश्न विचारणीय है और चिंतनीय है। पंचायती राज व्यवस्था की शुरुआत के बाद भी सत्ता का विकेंद्रीकरण होना चाहिए था, लेकिन ऐसा नहीं हो रहा है। यह स्पष्ट है कि गाँव की जगह वातानुकूलित कमरों में बैठकर योजनाएं बनाई जाती हैं। इन्ही वातानुकूलित कमरों में बैठे लोग, जो ग्रामीण समाज को नहीं जानते, योजनाओं और कार्यकम्रों को भी इसी तरह लागू करते हैं। अध्ययन से पता चला कि कुछ दलितों, कर्मचारियों और आधे पुरुषों को लगता था कि घरेलू कामों को पंचायत गतिविधियों में समय देने से उपेक्षा हो रही है। कुछ लोगों ने सोचा कि बहुत से गरीब परिवारों में दलित लोग भी आर्थिक कार्यों में भाग लेते हैं। आरक्षण के माध्यम से पंचायत में चुने जाने के कारण ऐसे परिवारों की आर्थिक गतिविधियों में कमी आई है। 73वें संविधान संशोधन अधिनियम ने पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा दिया है। दिन-प्रतिदिन दलितों को आरक्षण देना सराहनीय कदम है।

यह बुद्ध की शिक्षा की एक विशेषता है कि वह खुद को ईश्वर नहीं मानता था। उन्होंने ऐसा कोई दावा नहीं किया कि मैं ईश्वर का पुत्र हूँ या उसका संदेश वाहक हूँ। बुद्ध ने इसके विपरीत कहा कि उनके माता-पिता साधारण मर्त्य थे। बुद्ध ने आत्मा की अनश्वरता या परम सत्य के बारे में बहस नहीं की। स्त्री-पुरुषों के कष्टों की समस्या पर उनका ध्यान सिर्फ दुःख पर था। आंबेडकर ने बौद्ध धर्म की बुद्धिवादी और व्यावहारिक विशेषताओं को पसंद किया।[7]

राजनीतिक दल इस बात पर एकमत नहीं हैं कि यह सुरक्षा जारी रहनी चाहिए। तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने पंचायती राज संविधान संशोधन विधेयक को लोकसभा में पेश करते हुए गर्व से कहा कि इस विधेयक का एक बड़ा लाभ यह होगा कि अनुसूचित जातियों को पंचायतों में सीटें सुरक्षित रहेंगी। यह एक ऐसा प्रश्न था कि जनता नेता मधु दंडवते पीछे नहीं हटेंगे। हम आखिरी समय तक रिजर्वेशन में रहेंगे, उन्होंने कहा। हम सभी ने निश्चय किया कि अनुसूचित जातियों को अलग-अलग पत्तल देने की व्यवस्था जारी रखेंगे। हमने मान लिया कि अलगाव, जो कुछ समय तक विशेष सुविधाएं देने के उद्देश्य से था, अब जन्म-जन्मांतर तक रहेगा। इसलिए हमें उनका वोट लेना होगा। यदि हम उन्हें बताते रहें कि वे साधारण तरीके से प्राप्त नहीं कर सकते हैं, तो वे हमारे अधिक शुक्रगुजार होंगे। इसके लिए यह जरूरी है कि वे अपनी बुद्धि-विद्या-योग्यता के बल पर कभी बराबर का दर्जा नहीं पा सकेंगे।

राष्ट्रीय अभ्युत्थान और दलितों का उद्धार परस्पर विरोधी नहीं हैं। किंतु जब ब्राह्मणों, ठाकुरों, जाटों और यादवों के ठेकेदारों का जन्म हुआ, तो राष्ट्रीयता के नाम पर बहने वाली विभाजन की हवा में छोटी-बड़ी लकीरों का सिलसिला शुरू हुआ। जब हर कोई अपना काम करता है, तो सबको कौन देखेगा? सैयद शहादुद्दीन की मुस्लिम दुकान से उन लोगों को कोई खास

ऐतराज नहीं है जो इस समय सरकार में हैं या जो सरकार को हथियाने की कोशिश कर रहे हैं। उन्हें बस चिंता है कि दुकान का सामान कहाँ जाएगा। आज की राजनीति में गुमराह करना सबसे बड़ा खेल है। एक सांसद ने कहा कि दलितों की दुर्दशा पहले भी थी और अब भी रहेगी. वास्तव में, हरियाणा, पश्चिमी प्रदेश और कई अन्य स्थानों में हम वोट भी नहीं डाल सकेंगे। पूना कानून के बजाय, हम अपने प्रतिनिधि केवल अपने वोटों से चुनते। आज अपनी तकदीर का निर्णय लेने में हमारा योगदान कम है। यह वक्तव्य एक प्रकार से स्वीकार करता है कि वर्तमान में लकीरों का खेल हो रहा है। राष्ट्रीयता बदलती जा रही है। ऐसे पुरुषार्थी की आवश्यकता है जो लकीरों के खेल को समाप्त कर सके और देशभक्ति को गले लगा सके।

Dr. Ambedkar की योग्यता को देखते हुए जुलाई 1942 में वायसराय ने उन्हें अपने कार्यकारिणी का सदस्य बनाया। वे स्वतंत्र भारत की सरकार में कानून मंत्री रहे और भारतीय संविधान सभा ने उन्हें संविधान प्रारूप समिति का अध्यक्ष बनाया। यह दलित भारतीय इतिहास में एक बड़ी सफलता थी। अंबेदकर की कोशिशों से आज भारतीय संविधान में दलितों की स्थिति पर विशेष ध्यान दिया गया है। अस्पृष्यता अपराध अधिनियम 1955 ने छुआछूत को दंडनीय अपराध घोषित किया है।दलितों को स्वतंत्र विकास के लिए संसद से लेकर पंचायत तक जगह मिली है। अंबेदकर ने इस प्रकार दलितों को राजनीतिक अधिकार देने पर जोर दिया ताकि वे सामाजिक आर्थिक स्थिति में सुधार कर सकें और समाज में उनके साथ समानता का व्यवहार हो सके।

संदर्भ स्रोत

1. डॉ. अम्बेडकर, भारतीय श्रमिक आंदोलन-दशा व दिशा और दलित परिपेक्ष (समता प्रकाशन, जयपुर 2003), पृ.–42
2. डॉ. तेजसिंह, अम्बेडकरवादी साहित्य की अवधारणा (लोकमित्र प्रकाशन, दिल्ली, 2010), पृ.–27
3. डॉ. तेजसिंह, अम्बेडकरवादी विचारधारा और समाज (स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, 2008), पृ.–45
4. वहीं पृ.– 61.
5. गेल आम्वेट, अम्बेडकर टूवर्डस एण्ड एनलाईटमेंट इंडिया (पेनगुइन पब्लिकेशन, इंडिया, 1997), पृ.– 38
6. गणेश मंत्री गांधी और अम्बेडकर (दिल्ली प्रभात प्रकाशन, 1999), पृ.– 11
7. दलित प्रश्न, संधान-1, कृति संस्कृति और सिद्धांत का प्रश्न, अप्रैल 2001, पृ.– 30